भाषा के नये प्रश्न और भोजपुरी कविता

डॉ0 मुन्ना तिवारी*

सम्प्रेषणीयता साहित्य का अनिवार्य तत्त्व है जो लेखक और पाठक को जोड़ता है। लेखक के मन और भाषिक अधिकार का द्योतक भी है। यदि लेखक जब कोई कवि कर्म करता है तो उसकी एक दृष्टि होती है, विचार होता है, एक निश्चित संवेदना के धरातल पर होता है। यदि ये सभी पाठक को सामान्य अर्थ प्रतीत होता तो वह सम्प्रेषणीय रचना मानी जाती है।

कला की विकास का एक महत्वपूर्ण सोपान है सम्प्रेषणीयता, जो भाव संवेदना को उसी रूप में पाठक तक पहुँचाता है किन्तु कवि द्वारा शब्द चयन में ***''दूर की कौड़ी का निष्पादन''*** कवि को चाहे जितनी भी सहजता प्रदान करता हो, पाठक को दुरूहता के झंझावात में ढकेल देता है। डॉ0 रामचन्द्र तिवारी ने अपनी पुस्तक 'आलोचक के दायित्व' में इसके विभिन्न पहलुओं पर विचार किया है। एक समय साहित्य में यह एक महत्त्वपूर्ण विचार–विमर्श का मुद्दा बनकर निकला, जब साहित्य में रेणु का पदार्पण हुआ और उनके मैला–आँचल का प्रकाशन हुआ। मैला आँचल का स्टेशन का ***'टीशन'*** जैसे शब्द अंचल विशेष की व्याप्ति को द्योतित करता है।

भोजपुरी कविता हिन्दी भाषा–भाषियों को केन्द्र में रखकर नहीं लिखी गयी, किन्तु भोजपुरी भाषा–भाषियों में शब्द और क्रिया की अनेकता उनके अर्थ प्रतीति में बाधक है, जो सम्प्रेषणीयता की श्रेणी में बाधक है। अतएव डॉ0 रामचन्द्र तिवारी के सम्प्रेषणीयता पर विभिन्न पहलुओं पर उठाये गये विभिन्न विचारों और विमर्शों से पाठक सहज ही जुड़ जाता है।

सम्प्रेषण का शाब्दिक अर्थ है एक स्थान, एक व्यक्ति के पास से दूसरे स्थान या व्यक्ति के पास भेजना, पहुँचाना या स्थानान्तरित करना।[1] प्रसिद्ध आलोचक डॉ0 रामचन्द्र तिवारी का कथन है – ''आज अनुभव और भाषा दोनों का जो अवमूल्यन लक्षित किया जा रहा है, उसका मुख्य कारण आज की यांत्रिक सभ्यता ही है। इस सभ्यता में ही सहृदय के स्थान पर औसत पाठक को जन्म दिया है। इसलिए आज प्रेषणीयता के संकट से उबरने के लिए यांत्रिकता–ग्रस्त मानसिकता के ऊपर उठकर सहज मानवीय संवेदना को गहराई और विस्तार देना होगा, क्योंकि किसी भी स्थिति में प्रेषणीयता का खण्डित होना काव्य सृजन के मूल उद्देश्य का खण्डित होना है।''[2]

डॉ0 रामचन्द्र तिवारी सम्प्रेषणीयता के संकट के चार कारण बताते हैं।[3]

(1) जब कभी रचनाकार अपनी बात को नितान्त वैयक्तिक, असाधारण एवं परिचित बिम्बों के माध्यमों से व्यक्त करता है तो पाठक उससे पूरा–पूरा तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाता और प्रेषणीयता सम्भव नहीं हो पाती।

(2) जब रचनाकार जानबूझ कर पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए श्लिष्ट शब्दों, पारिभाषित पदों और चमत्कारिक उक्तियों के प्रयोग द्वारा अपनी रचना को जटिल ओर अगम्य बना देता है।

(3) जब रचनाकार परम्परागत काव्य विषयों और काव्य रूपों से सन्तुष्ट न होकर नवीन युग–बोध एक नई जीवन चेतना से प्रेरित होकर काव्य की अभिनव भावभूमि की तलाश में वस्तु और शिल्प दोनों स्तरों पर सर्वथा नये प्रयोग करता है। ये नये प्रयोग प्रायः रचनाकार की नई मानसिकता से अपरिचित होता है। इसलिए रचनाकार की विधायिका कल्पना और पाठक की ग्राहिका कल्पना में एक अन्तराल उपस्थित हो जाता है।

---

* **एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्री भगवान महावीर पी0जी0 कालेज, पावानगर, फाजिलनगर, कुशीनगर**

(4) जब कभी आलम्बन विधान करते समय आलम्बन के प्रति ऐसे भावों की अभिव्यक्ति करता है जो अनुचित एवं निन्ध है तो उसके साथ पाठक का तादात्म्य नहीं हो पाता है।

वास्तव में सम्प्रेषणीयता का संकट रचनाकार के विशिष्टता बोध, विषय की नवीनता और जटिलता और भाषा के संस्कार और उसकी क्लिष्टता आदि कारणों से पैदा होता है, किन्तु महान उद्देश्यों से परिचालित काव्यान्दोलन बार–बार इन बाधाओं से पार पाते है और अपने लिए सम्प्रेषण का नया माध्यम विकसित करते हैं। इसे विकसित करने के लिए कवियों, रचनाकारों को लोक की ओर उन्मुख होना पड़ता है। प्रसिद्ध आलोचक बच्चन सिंह कहते हैं – ''सामान्यजन की भाषा में आज भी एक ताजगी है। सामान्यजन यानि गाँव के किसान, शहर के मजदूर हमें ऐसी भाषा दे सकते है जो साहित्यकार को सम्प्रेषण के संकट से उबार सकती है।''[4]

यह कहा जा सकता है कि भोजपुरी भाषा साहित्य में सम्प्रेषणीयता का अपने आप में कोई प्रश्न नहीं है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगा क्योंकि भोजपुरी साहित्य की सम्प्रेषणीयता को लेकर कोई समस्या नहीं उठती है। हम जानते है कि भोजपुरी साहित्य भोजपुरी समुदाय की सहज भाषा में ही सम्भव होता है, इसलिये अपने समुदाय के बीच यह सहज सम्प्रेष्य होता है। भोजपुरी कविता में सम्प्रेषणीयता का गुण सहज ही उपलब्ध है। भोजपुरी कवियों में भी नये प्रतीक एवं नयी बिम्ब विधान का प्रयोग अत्यधिक होने लगता है फिर भी ये प्रतीक एवं बिम्ब लोक जीवन में गहरे अर्थों में जुड़ा हुआ है। यही वजह है कि सम्प्रेषणीयता का कोई विशेष संकट नहीं है।

भोजपुरी कविता स्वभावतः लोकोन्मुखी है। अपनी सहजता एवं गगनसदृश होने की वजह से अजनबी हो या पराये किसी को भी कठिनाई नहीं होती है।

भोजपुरी कविता अपनी सहजता एवं सरलता से लिपटी, सुगम एवं सीधे सम्प्रेषणीय होती है। सहज एवं सरल होने की वजह से एक दूसरे तक बहुत आसानी से पहुँचाया जा सकता है। कहीं से भी भोजपुरी कविता में बनावटीपन या ऐंठन नहीं है। भोजपुरी कविता बिल्कुल पारदर्शी है। भोजपुरी कवियों की प्रेरणा स्रोत दुर्लभ वस्तु नहीं होती बल्कि उसका अपना रहन–सहन, गाँव–जवार, खेत खलिहान, बाग–बगइचा ही होता है। भोजपुरी कविता अपने इर्द–गिर्द घूमती कविता है जिसमें–पेड़–पाताल, बालक–बूढ़े–जवान, गाँव की महिलाएँ, लड़किया, बगइचा, जमीन सबको एक लेकर चलने वाली होती है। भोजपुरी कवि मोती बी0ए0 की कविता ***''महुआ बारी में बहार'', सेमर के फूल'', अइसन फूल फूलाइल बा''*** और ***''चिरई हो चिरई''*** को देखकर सम्प्रेषणीयता सहज ही समा जाती है –

'असों आइल महुआ बारी में बहार सजनी
कोंचवा मातल भुइँया दूवे
महुआ रसे–रसे चूवे
जब से बहे भिनुसारे के बेयार सजनी
असो आइल महुआ बारी में बहार सजनी।'[5]

इसी तरह की मोती बी0ए0 जी की एक और कविता जो अपनी ध्वन्यात्मकता के साथ, समपूर्ण न्याय करती दृष्टिगत होती है।

चेंव–चेंव–चेंव–चेंव चिरई हो चिरई
चेंव–चेंव–चेंव–चेंव चिरई हो चिरई
खिचड़ी खइबूकि खइबू सतुआ
लबरी खइबू कि पीड़िया घोरूवा
भरूआ मरीचा आम के चटनी
ओकरी ऊपर सोगहग मुरई।[6]

मोती बी0ए0 की कविता 'मृगतृष्णा' बिम्ब एवं प्रतीकों के सहारे एक नया अन्दाज में लोक–लुभावन है –

नाचत बाते धाम रे हिरना बापिआसा
जेठ की दुपहरी में रेत के बा आसा
रेतिया बतावे दूर नाही बाटे धारा

तनी अउरी, दउरऽ हिरना, पा जइब किनारा।[7]

भोजपुरी कविता अपनी सरलता एवं सरल मन के लिए प्रचलित कविता है। भोजपुरी कविता में कुछ ऐसे शब्द अवश्य ही आते है जिसका अर्थ गाम्भीर्य है किन्तु इतना भी नहीं वह सम्प्रेषणीय न हो। भोजपुरी कवि का प्रथम प्रयास होता है कि उसकी कविता को प्रत्येक व्यक्ति आसानी से समझ सके। भोजपुरी कवियों में पं0 चन्द्रशेखर मिश्र अपनी सहज एवं सरल कविता के लिए जाने–माने जाते है –

मोछि मुरेरत, ऑखि घुरेरत,
पापी के कहू निरेखत नाही।
झॉकत बा हमही के सबै,

ओकरी ओरिया केहू देखत नाहीं।[8]

सम्प्रेषणीयता को समझने के लिए डॉ0 रामचन्द्र तिवारी कहते हैं – ''जब रचनाकार परम्परागत काव्य विषयों और काव्य रूपों से सन्तुष्ट न होकर नवीन युग–बोध एवं नई जीवन चेतना से प्रेरित होकर काव्य की अभिनव, भावभूमि की तलाश में वस्तु और शिल्प दोनों स्तरों पर सर्वथा नये प्रयोग करता है। ये नये प्रयोग प्रायः रचनाकार की नयी मानसिकता से अपरिचित होता है। इसलिये रचनाकार की विधायिका कल्पना और पाठक का ग्राहिका कल्पना में एक अन्तराल उपस्थित हो जाता है।''[9]

भोजपुरी कविता गँवई कविता है जिसमें प्रकृति के साथ अपना एक अलग ही सम्बन्ध होता है। इन कविताओं में प्रकृति का तादात्म गाँव से सीधा होता है। भोजपुरी कविता में भोर, भिनुसार, साँझ, गुन्हारे, डीह, देवी–देवताओं का वर्णन बहुत ही साधारण सी बात है। प्रकृति के साथ नजदीकी के कारण भोजपुरी कवियों में उदारता, सहृदयता एवं अपनी कसौटी तथा चुनौती पर खरा उतरना बहुत ही सरल वाणी आसानी से, लोगों के हृदय को छू जाना, यह सम्प्रेषणीयता के ही कारण होता है।

भोजपुरी कवि में 'सर्वे भवन्तु सुखिन' की भावना कूट–कूट कर भरी होती है। बावला जी की कविता अपनी धूरी–मिट्टी में रहकर उदारता की मिशाल कायम करता है –

भीखमपुरवासी उदासी बनवासी हम
घासी में पानी में जिनिगी बिताईला
बाहुबल बूता अहूता अस जंगल में

मंगल की कामना से मंगल मनाईला[10]

प्रसिद्ध आलोचक डॉ0 रामचन्द्र तिवारी ने सम्प्रेषणीयता के चार संकटों को बताया है जिसके अध्ययन के बाद यह देखा जा रहा है कि भोजपुरी कविता इससे अछूती है। भोजपुरी कवि ऐसे बिम्बों का सहारा लेता है जिससे पाठक सम्पूर्ण रूप से कविता के साथ अपने को जोड़ लेता है। जैसे पण्डित धरीक्षण मिश्र की कविता का झलक प्रस्तुत है –

लेके समाधि पवन पी के देहि साधि लेत
योगी अस बीतत महीना दुई चार बा।
भोगी नाम इनके प्रसिद्ध पहिले से हवे

भोग एक मात्र भैल जीवन आधार बा।[11]

इस स्तर पर भी भोजपुरी कविता असम्प्रेष्य नहीं है। भोजपुरी कवि परम्परा को साथ लेकर चलते है। वे परम्परा के उस रूप का वर्णन करते हैं जो सभी को सुख पहुँचाने वाले हैं–

गोबर से लिपल अंगनवा निहारे,
ए राजा, अबकी कमइया मुआर
फाटत करेजवा के सबुर धरइह,
ए रानी हमनी के हई बनिहार।[12]

भोजपुरी कवि की यह विशेषता है कि जब वह अवसाद और पीड़ा का वर्णन करता है तो वह उसके मूल कारण को उद्घाटित करते समय अपने संकेत और अर्थ संयोजन का भी सहारा लेता है जिससे कविता मर्मस्पर्शी हो जाती है।

भोजपुरी भाषा, कविता सहज ही अपने पाठक, श्रोता को अपनी तरफ आकर्षित कर लेता है। इसका प्रमुख कारण सम्प्रेषण होता है।

भोजपुरी कवि अपनी भावनाओं, आकांक्षाओं, आशाओं सभी को अपने श्रोता पाठक को सहज ही सम्प्रेषित कर देता है क्योंकि वह जानता है कि पाठक, श्रोता बहुत ही सहज है। इस प्रकार भोजपुरी कविता की बौधगम्यता उसके काव्य संवेदना को अधिक सम्प्रेषणीयता बनाती है। सैद्धान्तिकी में सम्प्रेषणीयता के विविध रूप भोजपुरी कविता में आते ही अपना अस्तित्व लगभग समाप्त कर देता है। लोक जीवन के निकट और लोक व्यवहार में अधिक प्रविष्ट भोजपुरी कविता मन की कल्लोल के इतने निकट होती है कि असम्प्रेषणीयता उसे छू भी नहीं पाती है किन्तु लोग ध्वनियों, संकेतों, अनुनासिक्य धुनों यथा हे रामा, हे कृष्णा, अहो रामा जैसे उपादान जितना अधिक उसे पाठकों के लिए बोधगम्य बनाते हैं।

इस प्रकार भोजपुरी कविता की बोधगम्यता उसके काव्य संवेदना को अधिक सम्प्रेषणीयता बनाती है। सैद्धान्तिकी में सम्प्रेषणीयता के विविध रूप भोजपुरी कविता में आते ही अपना अस्तित्व लगभग समाप्त कर देता है। लोक जीवन के निकट और लोक व्यवहार में अधिक प्रविष्ट भोजपुरी कविता मन की कल्लोल के इतने निकट होते हैं कि असम्प्रेषणीयता उसे छू भी नहीं पाती है। किन्तु लोक ध्वनियों, संकेतों, अनुनासिक्य धुनों यथा हे रामा, हे कृष्णा, अहो रामा जैसे उपादान जितना अधिक उसे पाठकों के लिए बोधगम्य बनाते हैं।

कहीं–कहीं यही संकेत उसके सम्प्रेषणीय में बाधा भी उत्पन्न कर देते है। दूसरे भोजपुरी शब्दों का विद्यत् सम्वत् एकीकृत कोई ऐसा रूप अभी परिलक्षित होता कि भोजपुरी क्षेत्र की व्याप्ति में एकरसता उपलब्ध कर सके। एक वही कविता एक क्षेत्र विशेष में बोधगम्य होती है तो दूसरे क्षेत्र में असम्प्रेषणीय हो जाती है और वहाँ पाठक के धैर्य की परीक्षा होने लगती है। फिर भी सम्प्रेषणीयता लेखक और पाठक के सहसंवेदना की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

जिसके कोई भी कोण का टूट जाना कविता की प्रसिद्धि में बाधक हो जाता है। सम्प्रेषणीय कविता वह होती है जिस पर ज्ञान का पैरा न हो। कबीर और तुलसी इसके अन्यतम उदाहरण है। जिनको अनपढ़ और गँवार भी बातों–बातों में उद्धरण प्रस्तुत करता है।

भोजपुरी कविता अपने पाठक समुदाय में सहज सम्प्रेष्य है। भोजपुरी कविता में सहजता एवं सरलता को बहुत गहराई से विशेष रूप में नहीं लाया जाता है बल्कि स्वयं ही ग्राह्य हो जाती है। इसीलिए भोजपुरी कविता में सम्प्रेषणीयता कोई प्रश्न नहीं है। भोजपुरी कविता लोकोन्मुखी कविता है, अपनी उदारता और स्वच्छन्दता को पाठक पर थोपती नहीं है। फिर भी अनजान लोगों का हृदय अपनी सहजता एवं विशालता से जीत ही लेती है। भोजपुरी कविता जहाँ एक ओर परदुख में दुःखी होती है, वहीं परसुख से सुखी होना उसकी नियति है। भोजपुरी कविता अपनी विशालतम् हृदय में सभी आमजन को विशेष महत्व देती है।

भोजपुरी भाषा अपने आन्तरिक सौन्दर्य और निश्चल भाव प्रबोध के नाते जल्दी ही ग्राह्य हो जाती है या अत्यधिक सम्प्रेषणीय हो जाती है। वह अत्यधिक सम्प्रेषणीयता भावार्थ को सरस के साथ

बेधक भी बना देती है और उसी के साथ कुछ *'टीस'* भी छोड़ देती है। यह टीस ही उसे अधिक देर तक जीवन्त बनाये रखती है। नीचे की लोकोक्तियाँ भोजपुरी की इन विशिष्टताओं का अन्यतम उदाहरण है जिसमें सहजता है, सरलता है, तीव्रता है, बेधकता है और उससे बढ़कर हमारे जीवन और प्रकृति के विविध राग–रंग है।

''छोटा मुँह और ऐंठा कान, यही बैल की है पहचान।''
''छोटी सींग और मोटी पूँछ, ऐसे को ले लो बे पूछ।''
''जहवाँ देखो लौह बैलिया, तहवाँ दीहौ खोल थैलिया।''
''अमहा जबहा जोतहु जाय, भीख माँगे के जाय बिलाय।''

भोजपुरी की लोकोक्तियाँ जीवन की आसक्तियों की उपज है जिसमें प्रकृति के साथ खेती और किसानी के कई चित्र उपस्थित है। जिसमें कहीं खेती के हेतु प्रकृति का आह्वान है तो कहीं प्रकृति के साथ जीवन का तादात्मय। कहीं किसान की आशाएँ एवं आकांक्षाएँ है, हर्ष एवं आह्लादन है तो उतनी ही मात्रा में विद्रुपता और विषाद भी है। क्रोधित प्रकृति प्रकृति से विप्ल्व की आशंका भी है। कई ऐसे चित्र है जहाँ पूरी खेती अपने सम्पूर्णता में विद्यमान है। हर्ष से हर्षातिरेक तक का किसान, दुःख से दुःख काटता तक का किसान इन लोकोक्तियों में अपनी सम्पूर्णता में विराजमान है। उसके कुछ चित्र दर्शनीय है –

''उत्तम खेती मध्यम बान, अधम चाकरी भीख निदान।''
''बाढ़ै पूत पिता के धर्मे, खेती उपजै अपने कर्मे।''
''जेठ में जरै माघ में ठरै, तब जी भी पर रोड़ा परै।''
''हरिहर खेती गाभिन गाय, तब जाने जब कण्ठ में जाय।''
''छोटा मुँह और ऐंठा कान, यही बैल की है पहचान।''
''जितना गहिरा जोतै खेत, बीज परै फल अच्छा देत।''

भोजपुरी कविताओं में लोकोक्ति मुहावरों का वही स्थान है जो शरीर में आत्मा का है। कभी–कभी तो ऐसा जान पड़ता है कि उनकी कविता की हर एक–एक वाक्य लोक की उक्तियाँ है या उन काव्य निष्पन्दन। कहीं–कहीं अर्थ की बेधकता कविता पुनर्पाठ के लिए हमें विवश करती है और उस पाठ में लोक अपने उक्ति के साथ विराजमान हो जाता है। उस अर्थ निष्पादन में मुहावरे की भूमिका देख मन गद्‌गद् हो उठता है। कबीर का ठेठ निरगुनपन जब कभी अन्तः साधनात्मक प्रतीक भाषा के निकट होता है। अपने *'सबदी'* में किसी लोक की यात्रा कर रहा होता है। तो लोकोक्ति और मुहावरों की झड़ी लगा बैठता है या कभी–कभी ये महसूस होता है कि कबीर की यह उक्तियाँ ही कालान्तर में लोकोक्ति बनी। किन्तु समकालीन भोजपुरी कवि अपनी कविता में मुहावरों एवं लोकोक्ति का प्रयोग करता है तो सायास करता है, अनायास नहीं। खेत, खलिहान, ऊसर, बेओडा (लमेरा) आदि शब्दों के प्रयोग में जब लोक से उसे आबद्ध करता है तो प्रायः लोकोक्ति और मुहावरों का सहारा लेता है। परन्तु एक नये शास्त्र का सृजन करता है। जिसमें लोक की राग–रागिनियाँ अपने उक्तियों और मुहावरों के माध्यम से साकार होती है। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सयायन 'अज्ञेय' ने लिखा है कि कविता सबसे पहले शब्द है और कविता के अन्त में जो कुछ शेष रह जाता है वह भी शब्द है अतएव कविता भाषा की परिणति है। भारतीय मनीषा की काव्य यात्रा कविता को संवेदना सम्पन्न बताती है। उसकी सफल परिणति बाल्मीकि के इस छन्द में खोजी जा सकती है –

''मा निषाद प्रतिष्ठां त्वम् ममः शाश्वतीः स
यत् क्रौच मिथुनादिक्मवधिः काम मोहितम्।''[13]

इसका विश्लेषण करते हुए डॉ0 कृपाशंकर पाण्डेय कहते है–''इस श्लोक का नियोजन भाषिक स्तर पर व्याकरणिक बद्धता का प्रतिनिधित्व करता है अथवा नहीं, अथवा वह कवि की एक विशेष रचना–शैली है अथवा उसके ह्रदय का सौन्दर्यात्मक आवेग है–इन शंकाओं के समाधान में श्लोक की

व्याकरणिक बद्धता और शैली धर्मिता उसके मूल उत्स तक जाने का प्रयास है और उस रूप में वह सर्जन का आंगिक सिद्ध होती है। सौन्दर्य तत्त्व और सर्जन का संवेदनात्मक सम्बन्ध होता है। प्रकारान्तर से इसे कला और जीव की विभाजक रेखा से भी विश्लेषित कर सकते हैं क्योंकि सर्जन जीवों का प्रमुख लक्षण है और कला आकर्षण का अनावरण है। इस रूप में उपर्युक्त श्लोक का 'काम मोहितम्' शब्द ही कवि की भाषा का विश्लेषण और काव्य–संवेदना का निरूपण कर देता है।''[14]

सामान्य भाषा और काव्य भाषा में अन्तर हैं। वहीं कविता के लिए भाषिक संघर्ष पैदा करती है। सामान्य भाषा और काव्य में अन्तर इस बात में है कि सामान्य भाषा शब्दों के साथ उसका उचित अर्थ का होना उचित और वांछनीय समझती है जबकि काव्य भाषा के लिए यह सुनिश्चिन्तता सही नहीं है। वह शब्दों के अर्थों को बार–बार नया करती है अर्थात् काव्य भाषा अमूर्तक क्रिया के माध्यम से अपनी जीवन्तता को प्रमाणित करती है। काव्य भाषा अपने मूल तत्वों जैसे संदर्भ, प्रतीक, बिम्ब, अप्रस्तुत आदि के विविध रूपों से सांस्कृतिक अनुषंगों के माध्यम से इस क्रिया को सम्पन्न करती है। यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि कविता में कवि इस क्रिया को सम्पन्न होने में सामाजिक प्रतिष्ठा भाषा के अनुरक्षण तथा पुनर्वविकरण का सहभागी होता है।

भारतीय आचार्यों ने काव्य भाषा अध्ययन व विवेचन काव्य शिल्प के सहारे किया है। वस्ततुः उनके दृष्टि में काव्य भाषा काव्यशिल्प का पर्याय है। जबकि काव्य भाषा, काव्य शिल्प का प्राणांग है। काव्य शिल्प स्वतन्त्र रूप से कविता का बाह्य परिधान है जिसके सहायता से कविता का श्रृँगार किया जाता है। काव्य भाषा उस काव्य शरीर का प्राण तक है जिसकी लज्जा के लिए शिल्पांग कारक सिद्ध होते है। **योगेन्द्र प्रताप सिंह** काव्य भाषा को प्रयोग की भाषा मानते है और उसे जनभाषा के रूप में प्रयोग करते हैं जो भोजपुरी भाषा को काव्य के रूप में रूपायित होती है। उनके शब्दों में ''काव्य भाषा प्रचलन की भाषा नहीं है, वह प्रयोग की भाषा जनभाषा है, और प्रयोग की भाषा एक विशिष्ट भाषा है जो कवि के व्यक्तित्व, सृजन के मन्तव्य तथा उसकी नियति से परिचालित होती है। वह भाषा सार्वजनिक संदर्भ से जुड़ी होने के बाद भी वैयक्तिकता से सन्दर्भित है। उसके स्वरूप का निर्धारण समाज नहीं स्वयं व्यक्ति (सर्जक) करता है जबकि प्रचलित भाषा के स्वरूप का निर्धारण एवं निर्माण दोनों समाज की स्वीकृति की भूमिका महत्वपूर्ण है।''[15]

सिद्धों ने प्राकृत भाषा को छोड़कर लोक भाषाओं काव्य रचना आरम्भ की। भोजपुरी कविता का आरम्भिक रूप गोरखनाथ की बानी और अन्य सिद्ध–नाथ कवियों की रचनाओं में मिलता है।

पण्डित दामोदर के 'उक्ति–व्यक्ति प्रकरण में भोजपुरी शब्दों का प्रयोग सबसे पहले मिलता है। भोजपुरी न केवल समर्थ काव्य भाषा के रूप में प्रयुक्त हो रही थी बल्कि अपनी अभिव्यंजना शक्ति, मुहावरों आदि से इतनी समर्थ हो गई कि गोरखनाथ के बाद कबीर आदि के कविताओं पर भी इसका प्रभाव पड़ा। भोजपुरी कविता अपने भाषिक संरचना में केवल अद्भुत है अपितु अद्वितीय भी है। एक तरफ भारतीय और पश्चिम के व्याकरणशास्त्र से निष्पन्न काव्यभाषा को अंगीकार करती है। अप्रस्तुत और प्रतीक विधानों की नवीन संरचना करती है तो साथ ही लोक के लयात्मक बोध को सहज स्वीकार करती है । ***हे रामा, सुनबेरे, गयो रे,*** जैसे अपनापन ध्वनियाँ भोजपुरी काव्य भाषा को नया आयाम पहनाती है।

मोती बी0ए0 की कविता 'महुआबारी में बहार' की इन पंक्तियों में भाषा के संघर्ष और उसके अन्विति की पड़ताल की जा सकती है। जैसे नामवर सिंह ने 'कविता के नये प्रतिमान में' नागार्जुन की कविता 'अकाल और उसके बाद' शीर्षक कविता का मूल्यांकन करने में जिस क्रिया व्यापार को सामने रखा है। उसकी तुलना ***''महुआबारी''*** से की जा सकती है। दोनों कविताओं की पंक्तियाँ उदाहरण के लिए प्रस्तुत है –

ओखरी में मूड़ी डरलें, मूसर से कुटइलें
लाटा बनिके बाहर अइलें, हाथे–हाथे भइले
केतना कहीं ई कहानी
बहे अँखिया से अँसुआ के धार सजनी

अपना जनमला के बाति जे बिचारी
कोइना ओकर नाँव राखी बाप महतारी
कोइना सेंकले बेवाई
पकना खा लइके अघाइ
उहाँ जरे जहाँ देखले अन्हार सजनी।[16]

साथ ही नागार्जुन की यह पंक्तियाँ –

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त
दाने आए घर के अन्दर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन के ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठीं घर भर की आँखे कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखे कई दिनों के बाद।[17]

''चूल्हा, चक्की, छिपकलियों, चूहों , कौए के अलावा दाने और धुआँ–जैसी रोज की जानी–पहचानी मामूली चीजों के द्वारा दो विरोधी स्थितियों को जिस प्रकार मूर्त किया गया है वह साधारण कवि–कौशल नहीं। यहाँ चीजों का सिर्फ वर्णन नहीं, क्रिया–व्यापार दिखाया गया है और क्रिया–व्यापार के चयन में भी एक दृष्टि है जिसे आचार्य शुक्ल ने ***'व्यापार–शोधन'*** नाम दिया है। ***'चूल्हा रोया'*** को यदि एक मुहावरा भी मान लें, तो ***'चूल्हा'*** और ***'उदास चक्की'*** के पास कानी कुतिया का सोना एक मर्मस्पर्शी क्रिया–व्यापार है जो मन में भावचित्र जगाता है। अनाज के लिए सिर्फ ***'दाने'*** शब्द का प्रयोग है, और अन्तिम स्पर्शः 'कौए ने खुजलाई पाँख' घर भर की खुशी के हिस्सेदार भी कौन–कौन और कहाँ–कहाँ के प्राणी है। क्या यह सब केवल सूक्ष्म पर्यवेक्षण और यथार्थ–चित्रण मात्र है ? वास्तविकता के मर्म की यह आन्तरिक पहचान कोई नैतिक दृष्टि नहीं ? एक मूर्तिमत्ता यह भी है, किन्तु तथाकथित बिम्बवादी मूर्तिमत्ता से कितनी अलग।''[18]

'ओखरी में मुड़ी डरले', 'मूसर से कुटइले' एक नियतिवादी भाषिक बिम्ब विधान है। जो कर्मवाद की ***'ओखरी'*** में पड़ते ही ***'मूसर'*** की चोट सहने पर बेवश और विवश हो जाता है। उस पर उसके चिपटा (लाटा) होने पर कुर्बानी जैसी व्यथा बोध एक नवीन संचेतना पैदा करती है। एक तरफ वह (महुवा) गरीबों के भूख मिटाने का साधन है। दूसरे तरफ अपने गन्ध से दूसरों को सुख प्रदान करने हेतु बेताब है। किन्तु सर्वात्म समर्पण की यह व्यथा उसका करूण–क्रन्दन ही तो है। 'महुवा' के फल 'कोइना' को भी एक नये रूपों में परिभाषित करने का विधान है। जिसके अपने जन्म पर ही पछतावा बोध हो वह **'कोइना'** कहलाता है। इन पंक्तियों में निष्छल समर्पण हेतु महुवा की धुन आलोचकों का ध्यान आकृष्ट करती है। जैसे नागार्जुन में ***'कौवे ने खुजलाई पाँखे'*** एक नये बिम्ब विधान की सृष्टि है कि घर में अन्न आने पर आत्म सन्तुष्टि का बोध केवल घर के लोगों को नहीं बल्कि कौवे तक को होता है।

भोजपुरी कविता अपने भाषिक संघर्ष में नित्य नूतन प्रयोग करती है और नई अर्थ ध्वनियाँ भी देती है। अनायास आये शब्द भी सायास मालूम पड़ते है और लोक धुन की ऐसी तरंगे बिखेरते है कि ध्यान प्रस्तुत की तुलना में अप्रस्तुत पर ज्यादा चला जाता है। कबीर इसके साक्षात् उदाहरण है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

कवन ठगवा नगरिया लूटल हो।
चंदन काठ कै बनल खटोलना, तापर दुलहिन सूतल हो।।
उठो री सखी मोरी माँग सँवारहुँ, दुलहा मोसे रूसल हो।

आये जमराज पलँग चढ़ि बैठे, नैनल आँसू टूटल हो।[19]

इन पंक्तियों में आत्मा और परमात्मा के बीच माया को दार्शनिक अन्दाज में प्रस्तुत किया गया है। किन्तु ये शब्द इतने मोहक है कि अर्थ को नित्य नया कर लेते है। माया का 'ठगनी' प्रयोग तो सर्वविदित है लेकिन नगर को लूटने में 'ठग' का प्रयोग विस्मयकारी है। 'बाँस' का प्रयोग न होता तो *'दुलहिन'* का दूसरा अर्थ सामने आ जाता है। किन्तु *'बाँस'* में उसके भटकने पर रोक लगा दिया है, और आत्मा को परमात्मा के मिलन में आत्मा को सज–धज जाने की वृत्ति ही दुलहिन वृत्ति है। हिन्दी में नववधू के अतिरिक्त कोई ऐसा शब्द नहीं है जो उसके पूरे सजाने–धजाने के चमत्कारिक रूप से व्यक्त कर सके। ऐसे ही मोती बी0ए0 के *मृग तृष्णा' में 'नाचत बाटे धामरे हिरना बा पियासा।' जेठ की दुपहरी में रेत के बा आसा। रेतिया बतावे दूर नाहि बाटे धारा। तनि अउरी दउर हिरना पा जइब किनारा।'*

धूप की चकाकौंध में हिरने की दौड़ और उसे पाने की आशा जब निराशा में तब्दील होती है तो वेदना नये अर्थ के साथ अलग भाव व्यक्त करती है। कवि जानता है कि वहाँ कोई पानी नहीं। किन्तु 'हिरना' के साथ थोड़ी दौड़ वह भी लगा लेता है, और उसकी आत्मा के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए कह उठता 'तनि अउर दउर' संघर्ष ही है। जो कविता को भाषा का नया सौन्दर्यशास्त्र देती है और कहीं शश्यूर के भाषा विवेचन के आगे निकल जाते हैं।

साहित्य शास्त्रियों ने नाटक को ही केन्द्र बिन्दु मानकर अपनी सम्पूर्ण साहित्य मीमांसा की है। काव्य–लक्षण, प्रयोजन और हेतु तो काव्य के पहिचान के रूप में आये किन्तु प्रारम्भिक तौर पर कविता का अभिप्राय नाटक से ही लिया जाता था। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र इसका अन्यतम उदाहरण है। उसमें चाहे काव्य लक्षण बताये गये हों या रस–निष्पति। उसकी केन्द्र भूमि नाटक ही रहा है। इस किमवदन्ति और भरतमुनि के तर्क में काफी वजन महसूस होता है कि वेदपाठी ब्राह्मणों या सामूहिक ऋचावादन के साथ पूजन करते–कराते जो ध्वनि संकेत के साथ आंगिक छटाँ बिखेरती थी। उसने नाटक या नाटकीयता को जन्म दिया। कालान्तर में नाटक को एक महत्वपूर्ण विधा मानकर शास्त्र रचे गये। समय के साथ नाटक ने काव्य से अलग अपनी निजी पहचान बनायी। सामाजिक या प्रेक्षकों से सीधा संवाद कायम किया। त्वरित रस निष्पादन के कारण अन्य काव्य विधाओं की तुलना में रस को साधारणीकृत कर नाटक ज्यादा लोकप्रिय हो चला। नाटक का मूल नाटकीयता केवल नाटक विधा तक ही स्थिर न रही। उसने साहित्य की अन्य विधाओं में भी अपनी पहचान कायम की। कविता चाहे जिस भाषा की हो नाटकीयता (Dramatic) ने उसे सजाने और सँवारने में अलग वेग पैदा की। 'राम की शक्ति पूजा' उसका बेहतर उदाहरण है। उसके जो तेरह भाग है प्रायः हर भाग एक स्वतन्त्र Drama है कहीं–कहीं उसमें Flash Back तकनीक का उपयोग भी है। तो कहीं सीधे तौर पर क्रिया व्यापार (Action) है। *'असाध्यवीणा' 'अंधेरे में', 'कामायनी'* जैसी विश्व प्रसिद्ध रचनाओं का मूल भी यही Drama भोजपुरी कविता की लोक संवेदना की सहज व स्वाभाविक आवृत्ति है। प्रकृति से लेकर मनु तक, जीव जगत् से लेकर माया और ब्रह्म तक, कल्पना, यूटोपिया से लेकर यथार्थ के कड़वे दंश तक कि भोजपुरी कविता में एक कोई बिन्दु अगर सामान्य है तो वह उसकी नाटकीयता है। अगर बात घोर अध्यात्म की हो रही हो तो उसके साजो–सामान, तौर–तरीके अत्यन्त स्वाभाविक होते हुए भी एक नाटक की सृष्टि करते है। कबीर की इन पंक्तियों को सहज ही देखा जा सकता है –

कवन ठगवा नगरिया लूटल हो।
चन्दन काठ कै बनल खटोलना तापर दुलहिन सूतल हो।।
उठो री सखी मोरी माँग सँवारहुँ, दुलहा मोसे रूसल हो।
आये जमराज पलँग चएि बैठे, नैनन आँसू टूटल हो।।
चारि जने मिलि खाट उठाइनि, चहुँ दिसि धू–धू ऊछल हो।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जग से नाता छूटल हो।

यह कविता पूर्व में जिसका मैने जिक्र किया है दूसरा अर्थ देती है किन्तु यहाँ 'कवन ठगवा नगरिया लूटल हो' में ठग द्वारा नगर का लूटा जाना एक नाटकीय औत्सुक्य पैदा करता है। जिसमें शव यात्रा की तैयारी का प्रसंग आते ही एक औत्सुक्य बोध का समाधान होता है। लेकिन बाँस–बल्ली इत्यादि शव–यात्रा के सामान और उनके बीच से उपजा हुआ प्रश्न वाचक चिन्ह बाँस तो बाँस होता है। (कवन) कौन बाँस लाकर के नाटकीयता परिलक्षित की गयी है। पर्याय के लिए बहु को विदा हेतु डोली से सजावट की तुलना सच्चा नाटकीय बोध (Dramatic Since) है। संसार का हर एक व्यक्ति बड़े कैनवस पर हो रहे नाटक का पात्र है। वह एक दिन में कई तरह का रोल अदा करता है। कभी माँ–बाप, कभी बेटा–बेटी, कभी पति–पत्नी तो कभी समाज का सजग प्रहरी। उसके सच्चे पात्र के रूप में खेला जाने वाला ड्रामा का साहित्यिक अभिव्यक्ति भोजपुरी कविता में जादुई यथार्थ के रूप में परिलक्षित होती है। धरीक्षण मिश्र की 'कवना दुखे डोली में रोवति जाति कनिया' यथार्थ की यूटोपिया है जो नाटकीय बोध से निर्मित है। उसकी हर एक पंक्ति प्रश्न है तो अर्धाल का अन्तिम भाग उसका उत्तर। इस प्रश्नोत्तर यथार्थ की कलात्मकता एक नाटकीय बोध सृजित करती है और पाठक उसका सहगामी हो जाता है। पूरी काव्य–यात्रा मनोरंजक, चिन्तनयुक्त और यथार्थ परक हो जाती है।

एके दू कौर खा के रातो दिन रहे के परी
देहि के जरावे लागि भूखि अगिनियाँ।
खैला के पहिले आ पाछे थारी जाँच करे
अइहे बला के कुछ माई आ बहिनियाँ।
अधिका खैला से लोग लागी बदनाम करें
ऐसने बा एकरा खन्दान के रहनियाँ।
एहि तरे केतने महिना ले रहे के परी
एही दुखे डोली में रोवति जाति कनिया।[20]

गाँव का दृश्य यूँ ही मनोरंजक होता है। सामान्य बात भी बिना नमक–मिर्च के नहीं कही जाती कहने का ढंग और अदा चाहे उससे दूसरे के प्राण ही निकल रही हो तो क्या ? एक नाटकीय बोध से नवसृजन करता है। ये पंक्तियाँ इसकी अन्यतम् उदाहरण है। बहू के आने पर गाँव की औरतों का हुजूम उसे देखने पहुँच जाता है। प्रायः उसके हर एक–एक बात की नोटिस ली जाती है तो जनमे से भूखादूर बा, नइहरे में खायके नाहि मिलल बा आदि शब्दों से नवाजा जाता है। खाना खाने के पहले और उसके बाद भी थाली तक जाँचा जाता है। इस चित्र विधान को क्रियात्मक ढंग से व्यक्त करने वाले धरीक्षण मिश्र नारी दंश के गहरे प्रणेता है। उनकी हर एक पंक्ति नूतन नाट्य विधान रचती है।

भोजपुरी कविता प्रकृति चित्रण में भी छायावादियों सदृश्य नाटकीय विधान करती है। निराला की *'जूही की कली', 'बादल राग', 'सन्ध्या सुन्दरी'* या पन्त की *'नौका–बिहार', 'परिवर्तन', 'ग्रन्थि'* आदि कविताओं में जैसा Dramatic दिखाई पड़ता है वैसा ही मोती बी0ए0 की कविता *'महुवाबारी में बहार।'* निराला की 'यामिनी जागी' का यह दृश्य कितना नाटकीय है।

(प्रिय) यामिनी जागी।
अलस पंकज–दृग अरूण–मुख तरूण–अनुरागी।
खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ–ग्रीवा–बाहु–उर पर तर रहे,
बादलों में घिर अपर दिनकर रहे,
ज्योति की तन्वी, तड़ित–द्युति ने क्षमा माँगी।[21]

प्रकृति जैसे अमूर्त विधान को साक्षात् स्त्री वेश में प्रतिरूपित कर जो नाटकीय चित्र निराला द्वारा प्रस्तुत किया गया है वह दुर्लभ है। ऐसा चित्र थोड़े नये ढंग और अन्दाज में मोती बी0ए0 की कविता 'महुवा बारी में बहार' में दिखाई पड़ता है –

होत मुन्हारे डलिया दउरी लेके गइली सखिये
लोढ़े लगली फुलवा जुड़ावे लगली अँखिया
महुआ टप–टप फूल चुआवे
लइका सेल्हा ले ले धावे

अब त लागि गइल दुसरे बाजार सजनी।[22]

'जुड़ावे लगली अँखिया' की आश्वस्त और शान्त चित्त मानस का नाटकीय बिम्ब विधा वह भी महुवा जैसे प्रकृति बोध को लेकर चित्रित किया जाना अन्यतम है।

भोजपुरी कविता प्रकृति और मनुष्य के जीवन–जीवन को एक दूसरे में अवलम्बित कर सर्जना का जो मानक उपस्थित करती है। वह बिना नाटकीय बोध के सम्भव नहीं है। चूँकि भोजपुरी कविता गँवई गन्ध की कविता है। संयुक्त परिवार की कविता है तो कहीं माँ–बाप, भाई–बहन, चाचा–चाची, काका–काकी, दादी, ईया, बुआ के बीच वर–वधू के प्रेम पल्लवन का ऐसा नाटकीय बिम्ब विधान प्रस्तुत करती है जो एकांगी जीवन में सम्भव ही नहीं। लेकिन जब भोजपुरी कविता एकांगी जीवन के तरफ मुड़ती है तो अपने नाटकीय बोध में कालिदास के मेघदूत का याद दिलाता है।

मन्दं–मन्दं नुदति पवनश्चानूकूलो यथा त्वां
बामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः।।[23]

यह पंक्तियाँ विरह की सच्ची पाती है। जिनको लेकर नागार्जुन को कहना पड़ा था –

कालिदास, सच–सच बतलाना।
इन्दुमती के मृत्युशोक से
अज रोया या तुम रोये थे ?

कालिदास, सच–सच बतलाना।[24]

निश्चय ही ड्रामा की चरम उपलब्धि है। किन्तु भोजपुरी कविता अपनी नाटकीय सौन्दर्य विधान में एकदम आगे बढ़ती है। वह केवल रति या कवि के दुःख से आहत नहीं होती अपितु वैयक्तिक पाती समस्तीगत हो जाती है। उसके पाती में एक वर्ग विशेष की पूरी दुःख कातरता जीवन्त हो उठती है। त्रिलोकीनाथ उपाध्याय की इस कविता में कम पढ़ी–लिखी एक स्त्री अपने पति के पास एक पत्र लिखती है और पति से पैसे की माँग करती है। पति द्वारा भेजे गये पैसे से उसकी आवश्यकताएँ पूरी नहीं होती है। पैसे के अभाव में वह स्त्री अपने पति से अपनी लाचारी जिस भाव में व्यक्त करती है उसका एक झलक देखत ही बनता है।

लिखि देई स्वस्ती श्री चिट्ठी राउर पवलीं,
पाँच सोरह रूपया त रउरे पठवलीं।
एतनो से कम नाही होवे ले बिपतिया,
रोय रोय पतिया लिखावे रजमतिया।
कबरी छगरिया हमार बेरमाइल,
पाड़े जी के झबरा पिलउआ हेराइल।
कोंहड़ा पर पाला मरलसि, लागल नाँही बतिया,

रोय रोय पतिया लिखावे रजमतिया।[25]

संश्लिष्ट अर्थ छायाओं को मूर्त करने की दृष्टि ही बिम्ब का रूप ग्रहण करती है। किन्तु ज्यों ही वह सर्व स्वीकृति होती है या यूँ ही कहे कि बार–बार प्रयुक्त होकर किसी भाव–स्थिति विशेष होती है तो उसे प्रतीक मान लिया जाता है। सामान्यतया किसी पदार्थ की मानसिक प्रतिक्रिया ही उनका बिम्ब है। काव्य के अन्तर्गत भाव–अनुभूति, राग और विचार जब सघन होकर इस प्रकार मूर्त हो जाते है कि मूर्त विधान में प्रस्तुत–अमूर्त विधान को अलग नहीं किया जा सकता है। तब एक वास्तविक बिम्ब की सृष्टि होती है। बिम्ब की उपमा एक खिले हुए पुष्प के रूप में बिम्बित हो जाता है। इसी प्रकार अरूणाभ कपोलों वाली लावण्यमयी नृत्यांगना की छायाछवि को देखकर लगता है कि सौन्दर्य की समस्त अवधारणा उसके माध्यम से बिम्बित हो उठी है। केदारनाथ सिंह ने बड़ा ही सारगर्भित बात बिम्ब विधान के बारे में कहा है – ''बिम्ब वह शब्द है–चित्र है जो कल्पना के द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है।''[26] प्रतीक का अर्थ होता है किसी एक वस्तु के प्रतिनिधि या व्यंजक रूप में दूसरी वस्तु को प्रस्तुत करना। उदाहरण के लिए हम गणित के क्षेत्र में जोड़ के लिए (+) और घटाने के लिए (–) चिन्हों का प्रयोग करते है। इसी प्रकार शांति की भावना को व्यंजित करने के लिए (0) निशाना बना देते है। अमूर्त वस्तुओं को मूर्त और मूर्त वस्तुओं को अमूर्त प्रस्तुत करने के लिए भी प्रयुक्त होते है। जैसे– ***'यश'*** एक अमूर्त भाव है उसे मूर्त करने के लिए हम 'श्वेत' वस्तुओं को सामने लाते है और गंगा नदी एक मूर्त प्राकृतिक जलधारा है उसे मातृत्व प्रदान करने के लिए हम अमूर्त दैवी शक्ति की कल्पना कर लेते है। डॉ0 रामचन्द्र तिवारी ने हिन्दी साहित्य में छायावादी रहस्यवादी कविता में नूतन प्रतीक का आधार माना है। ''पंत की कविता में प्रातःकालीन ***'प्रथम रश्मि' 'नवीन–चेतना'*** का प्रतीक बनकर आई। 'निराला' में 'बादल' ध्वस–सृजन और क्रान्ति का प्रतीक बन गया। 'प्रसाद' में ***'लहर'*** नूतन भावोल्लास के प्रतीक रूप में गृहीत हुई और महादेवी की कविता में 'दीपशिखा' समर्पित जीवन की उत्सर्ग–चेतना का प्रतीक बनी। छायावादी काव्य में ***'पुष्प का विकास',*** उल्लास का ***'मुकुल'***, प्रेम का ***'उषा'*** ताजगी और स्फूर्ति का तथा ***'संध्या'*** वैराग्य का प्रतीक माने गए। इन प्रतीकों के प्रयोग से काव्य भाषा की व्यंजना–शक्ति समृद्ध हुई। कवि सूक्ष्मतम अनुभूतियों को व्यक्त करने में समर्थ हुए किन्तु किसी ने छायावादी कवियों को प्रतीकवादी नहीं कहा।''[27] तत्पश्चात् डॉ0 नगेन्द्र ने आध्यात्मिक प्रतीक से साहित्यिक प्रतीक को अलगाते हुए कहा है – ''प्रतीक एक प्रकार से रूढ़ उपमान का ही दूसरा नाम है; जब उपमान स्वतन्त्र न रहकर पदार्थ विशेष के लिए रूढ़ हो जाता है तो वह प्रतीक बन जाता है।''[28]

संदर्भ ग्रंथ

1. बृहद हिन्दी कोष–ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी, पृ0सं0–116
2. आलोचक का दायित्व–डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, पृ0सं0–17
3. आलोचक का दायित्व–डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, पृ0सं0–15–16
4. आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द–डॉ0 बच्चन सिंह, 1994, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली–द्वितीय संस्करण, पृ0सं0–120
5. डॉ0 अरूणेश नीरन–समकालीन भोजपुरी साहित्य (अंक–3, जनवरी–मार्च शांडिल्य 1997) पृ0सं0–60
6. सम्पादक : भोजपुरी लोक (मोती बी0ए0 अंक), पृ0सं0–32
7. डॉ0 राजेश्वरी शांडिल्य–भोजपुरी लोक, जनवरी–फरवरी 1999 संयुक्तांक
8. चन्द्रशेखर मिश्र–द्रौपदी–पृ0सं0–34
9 चन्द्रशेखर मिश्र–द्रौपदी–पृ0सं0–34
10. सम्पादक–उॉ0 अरूणेश नीरन, समकालीन भोजपुरी साहित्य अंक–5, (जुलाई–सितम्बर 1997)
11. पं0 धरीक्षण मिश्र – शिव जी खेत (साँप के सुभाव) पृ0सं0–42

12 मधुकर सिंह–रूक जा बदरा (महुआ के गीत), पृ0सं0–12
13 डॉ0 कृपाशंकर पाण्डेय–हिन्दी काव्य भाषा, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0–11
14 डॉ0 कृपाशंकर पाण्डेय–काव्य भाषा–स्वरूप एवं व्याख्या, पृ0–11
15. डॉ0 योगेन्द्र प्रताप सिंह–काव्य भाषा भारतीय पक्ष, पृ0–13
16. डॉ0 अरूणेश नीरन, पुरइन–पात पृ0–30
17. डॉ0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव–अस्मिता, पृ0–17
18. डॉ0 नामवर सिंह, कविता के नये प्रतिमान, पृ0–123
19. डॉ0 अरूणेश नीरन–पुरइन–पात, पृ0–61
20. अशोक द्विवेदी–भोजपुरी लोक–1993, पृ0–23
21. डॉ0 वेदप्रकाश पाण्डेय–सम्पादक–धरीक्षण मिश्र रचनावली (काव्य–दर्पण) द्वितीय खण्ड पृ0–217–218
22 रामविलास शर्मा–सम्पादक–राग–विराग, लोक भारती प्रकाशन, पृ0–45
23. डॉ0 अरूणेश नीरन एवं डॉ0 चित्तरंजन मिश्र–सम्पादक–पुरइन–पात, पृ0–29
24. महाकवि कालिदास–मेघदूतम, श्लोक–10, पृ0–18
25. डॉ0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव–सम्पादक–अस्मिता, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी पृ0–17
26. त्रिलोकी नाथ उपाध्याय–माटी की महक–भाग एक
27. डॉ0 केदारनाथ सिंह–आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान का विकास, पृ0–23
28. डॉ0 रामचन्द्र तिवारी–भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिन्दी–आलोचना, पृ0–145